कलश है, सातवीं गाथा का कलश। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं। प्रवचनसार की गाथा में। जयसेनाचार्य की टीका में है।

तेजो दिट्ठी णाणं इड्ढी सोक्खं तहेव ईसरियं।
तिहुवणपहाणदइयं माहप्पं जस्स सो अरिहो।।

अरिहन्त कैसे हैं - इसकी व्याख्या है। परमात्मा की व्याख्या चलती है न? परमात्मा किसे कहना? सर्वदोषरहित और सकल गुणसहित; उन सब दोषों का वर्णन आया। चार घातिकर्मों का नारा अथवा अठारह दोष रहित हैं, ऐसों को परमात्मा कहते हैं। समझ में आया? **तेज (भामण्डल),...** अरिहन्त भगवान को भामण्डल है। शरीर के

आस-पास प्रकाश होता है। वह था न यहाँ? अरिहन्त परमात्मा तीर्थंकरदेव के शरीर में प्रकाश-भा अर्थात् प्रकाश होता है। साधारण प्राणी, अरिहन्त को-भगवान को परमात्मा सिद्ध करते हैं - ऐसा नहीं। जिनके शरीर में भी प्रकाश - आभा पड़ता होता है। **भा।**

और **दर्शन (केवलदर्शन),... 'दिट्ठी'** है न? **'दिट्ठी'** यह गुण है। जिन्हें केवलदर्शन है। भगवान को केवलदर्शन होता है। एक समय में सामान्य तीन काल-तीन लोक को देखे। जाने नहीं, देखे-ऐसी दृष्टि। **'दिट्ठी'** कल आया था। दृष्टि के अर्थ में केवलदर्शन आया था न? भगवान को केवलज्ञान होता है। एकसमय में तीन काल, तीन लोक पूर्ण जाने, ऐसा केवलज्ञान होता है और **(समवसरणादि...),** की ऋद्धि होती है। समवसरण बारह प्रकार की सभा आदि की ऋद्धि भगवान को होती है। उसे भगवान को व्यवहार से उनकी ऋद्धि है, उन्हें भगवान कहा जाता है। **(अनन्त अतीन्द्रियसुख),...** होता है। अरिहन्त परमात्मा, तीर्थंकरदेव सशरीरी होने पर भी अनन्त आनन्द होता है। **(इन्द्रादिक भी दासरूप से वर्ते, ऐसा) ऐश्वर्य...** है। है न **'ईसरियं'?** इन्द्र भी जिनके दास वर्ते—ऐसा तो ईश्वरपना है। ऐसे भगवान को रोग, क्षुधा, और तृषा हो तो उनमें ईश्वरपना नहीं गिना जाएगा। ईश्वर, इन्द्र के भी ईश्वर हैं वे। समझ में आया? भगवान के शरीर में रोग आवे, उन्हें क्षुधा लगे, तृषा लगे, यह नहीं हो सकता। परमात्मा अरिहन्त को अन्तर (में) अमृत का अनुभव होता है। उस अनुभव के समक्ष इन्द्र भी जिनकी ऐश्वर्यता स्वीकार करते हैं।

(तीन लोक के अधिपतियों के वल्लभ होनेरूप) त्रिभुवनप्रधान वल्लभपना... तीन लोक के इन्द्र आदि से भी वे वल्लभ हैं। **त्रिभुवनप्रधान वल्लभपना...** है। तीन लोक के अधिपतियों के वल्लभ हैं। समझ में आया? देखो! ऐसे परमात्मा की व्याख्या (करते हैं)। णमो अरिहंताणं - ऐसा कहे, परन्तु अरिहन्त का स्वरूप क्या? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और बाह्य में भामण्डल आदि समवसरण की ऋद्धि। यहाँ तीर्थंकर की बात करनी है न! यह सब होता है। पुण्य भी अलौकिक होता है और गुण भी अलौकिक होते हैं। **ऐसा जिनका माहात्म्य है, वे अर्हन्त हैं।** उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। लो! अर्हंत शब्द है इसमें। **'अरिहो'** पूज्य हैं, इन्द्रों को भी वे पूज्य हैं।

और इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (आत्मख्याति के

२४वें श्लोक में-कलश में) कहा है... यह अपने समयसार में आया था।

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये,
धामोद्दाम-महस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतं,
वन्द्यास्तेऽष्ट-सहस्र-लक्षण-धरास्तीर्थेश्वराः सूरयः ।।

भगवान तीर्थंकरदेव के शरीरादि **कान्ति से दशों दिशाओं को धोते हैं, निर्मल करते हैं;...** ऐसा तो शरीर होता है। उन भगवान को रोग हों, और दवा लावे और खाये, (यह तो कहाँ से होगा) ?

मुमुक्षु : यह तो शरीर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर है तो क्या हुआ ? यह शरीर अलग प्रकार का है। भगवान को परमौदारिक शरीर होता है। उन्हें रोग, क्षुधा और तृषा नहीं होते और क्षुधा, तृषा मानते हैं, वे अरिहन्त को नहीं पहिचानते। (उन्हें) अरिहन्त का ज्ञान ही नहीं है। नहीं पहिचानते ?

मुमुक्षु : नहीं, नहीं। इनके जैसा मान लिया। रोग होता है (ऐसा मान लिया)।

कान्ति से दशों दिशाओं को धोते हैं, निर्मल करते हैं; जो तेज द्वारा अत्यन्त तेजस्वी सूर्यादिक के तेज को ढँक देते हैं;... चन्द्र और सूर्य का तेज भी जिसमें ढँक जाता है, ऐसा भगवान के शरीर का तेज होता है। उन्हें ऐसे रोग, क्षुधा आदि हो ही नहीं सकते। विरोध करे, उसके लिये यह स्पष्ट होता है। समझ में आया ? श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तो उन्हें रोग सिद्ध करते हैं, क्षुधा सिद्ध करते हैं, तृषा सिद्ध करते हैं, ऐसा है नहीं। एकदम विरुद्ध है।

जो रूप से जनों के मन हर लेते हैं;... शरीर की सुन्दरता की तो इतनी कोमलता होती है कि जगत के प्राणियों के मन अन्दर स्थिर हो जाते हैं। आहा..हा..! अन्तर स्वरूप की तो क्या बात करना ? शरीर की सुन्दरता की भी कोमलता। इन्द्रों की अपेक्षा भी अनन्तगुनी जिनकी कोमलता होती है, ऐसे उनके पुण्य होते हैं। **जो दिव्यध्वनि द्वारा (भव्यों के) कानों में मानों कि साक्षात् अमृत बरसाते हों...** कोष्ठक में **(भव्यों)** डाला है। **जो दिव्यध्वनि द्वारा (भव्यों के) कानों में...** इसमें ऊपर से भव्यों शब्द डाला है। बाद में भवि शब्द आयेगा। इसमें भव्य नहीं आता। बाद में कलश में आयेगा न आगे ?

'निखिलभविनामेतत्कर्णामृतं' १५वें कलश में (आयेगा)। वहाँ भवि नहीं लेना। वहाँ भव के धारक ऐसे जीव लेना। यहाँ भवि शब्द है, १५वाँ कलश है। **जो सर्व भव्यों के कर्णों को अमृत है;...** यह अपने सुधारा है। **सर्व भव्यों के कर्णों को अमृत है;...** बाद के कलश में। क्योंकि वहाँ भवि शब्द है न? भव्य नहीं। भवि अर्थात् भव का धारक। ऐसे सर्व जीवों को भगवान की वाणी अमृत है। यहाँ तो साधारण होवे तो... यह शब्द में नहीं, परन्तु भाई ने - पण्डित जयचन्दजी ने डाला है। अपने तो कोष्ठक में डाला है। उन्होंने तो सीधे बाहर डाला। बाहर शब्द डाला है। जो दिव्यध्वनि द्वारा-भगवन तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि, ॐ-ऐसी आवाज उठने पर, समवसरण में **(भव्यों के) कानों में मानों कि साक्षात् अमृत बरसाते हों—** अमृत बरसाते हों **ऐसा सुख उत्पन्न करते हैं,...** सुख, यह बाहर का, हों! अतीन्द्रिय आनन्द के सुख की बात नहीं है।

मुमुक्षु : मन्द कषाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्द कषाय उसे लगे। आहा..हा..! नहीं तो भगवान की वाणी सुनकर अतीन्द्रिय आनन्द प्रगटे तो हो गया... भगवान की वाणी सुननेवाले सभी मोक्ष ही जायें... परन्तु यहाँ तो उन्हें पुण्य का सुख। उसे ऐसा लगे कि मानो... आहा..हा..! वाणी तो मानो पिया ही करें, सुना ही करें - ऐसा लगे। ऐसी कषाय की मन्दता का सुख उत्पन्न करे।

और जो एक हजार तथा आठ लक्षणों को धारण करते हैं;... भगवान तीर्थंकर के शरीर में ध्वजा आदि एक हजार आठ लक्षण होते हैं। **वे तीर्थंकरसूरि वंद्य हैं।** लो! वे तीर्थंकरसूरि, आचार्य आदि वंद्य हैं।

श्लोक-१४

और (सातवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक द्वारा श्री नेमिनाथ की स्तुति करते हैं) —

(मालिनी)

जगदिद-मजगच्च ज्ञान-नीरेरुहान्त-
र्भ्रमरवदवभाति प्रस्फुटं यस्य नित्यम्।
तमपि किल यजेहं नेमि-तीर्थङ्करेशं,
जलनिधिमपि दोर्भ्यामुत्तराम्यूर्ध्ववीचिम् ।।१४।।

(वीरछन्द)

जैसे कमल पुष्प के भीतर, अलिगण सहज समाते हैं।
वैसे जिनके ज्ञान-कमल में, लोकालोक समाते हैं॥
उन नेमीश्वर तीर्थंकर की, सचमुच पूजा करता हूँ।
उच्च तरंगोंयुत भवदधि को, निज भुजबल से तरता हूँ॥१४॥

***श्लोकार्थ :*—जिस प्रकार कमल के भीतर भ्रमर समा जाता है; उसी प्रकार जिनके ज्ञानकमल में यह जगत तथा अजगत (लोक तथा अलोक) सदा स्पष्टरूप से समा जाते हैं, ज्ञात होते हैं, उन नेमिनाथ तीर्थंकर भगवान को मैं सचमुच पूजता हूँ कि जिससे ऊँची तरंगोंवाले समुद्र को भी (दुस्तर संसार को भी) दो भुजाओं से पार कर लूँ॥१४॥**

श्लोक-१४ पर प्रवचन

और (सातवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक द्वारा श्री नेमिनाथ की स्तुति करते हैं)— पद्मप्रभमलधारिदेव स्वयं नेमिनाथदेव को स्मरण करके स्तुति करते हैं।

१४वाँ कलश है।

जगदिद-मजगच्च ज्ञान-नीरेरुहान्त-
र्भ्रमरवदवभाति प्रस्फुटं यस्य नित्यम्।
तमपि किल यजेहं नेमि-तीर्थङ्करेशं,
जलनिधिमपि दोर्भ्यामुत्तराम्यूर्ध्ववीचिम्।।१४।।

जिस प्रकार कमल के भीतर भ्रमर समा जाता है;... है या नहीं अपने? **जिस प्रकार कमल के भीतर भ्रमर समा जाता है;...** भ्रमर। कितनी जगह बाकी रहे? कमल में भ्रमर। इसी तरह **ज्ञानकमल में यह जगत तथा अजगत (लोक तथा अलोक) सदा स्पष्टरूप से समा जाते हैं,...** आहा..हा..! भगवान तीर्थंकर के ज्ञान में एक समय में लोकालोक स्पष्टरूप से, जैसे कमल में भ्रमर समा जाये, वैसे लोकालोक समा जाते हैं। कमल इतना और भ्रमर छोटा। (इसी तरह) ज्ञान बड़ा और लोकालोक छोटा। जिसका स्वभाव है, उसका प्रश्न क्या? जिसका स्वभाव शक्तिरूप है, उसकी तो बात क्या करना? परन्तु एक समय की दशा प्रगटरूप है, उसकी क्या बात करनी!! कहते हैं। कमल में जैसे भ्रमर समा जाता है, वैसे भगवान आत्मा की पूर्ण ज्ञानदशा में लोकालोक समा जाते हैं। इससे अनन्तगुना हो तो भी जानने की ताकत है। आहा..हा..! देखो! यह आत्मा की ऋद्धि!!

सदा स्पष्टरूप से समा जाते हैं,... प्रत्यक्ष है-ऐसा कहना है। **'स्फुटं'** है न? **'भ्रमरवदवभाति प्रस्फुटं'** प्रत्यक्ष है। जैसे ज्ञान में लोकालोक ज्ञान की एक समय की दशा में, कमल में जैसे भ्रमर बसे, वैसे ज्ञान में लोकालोक बस गया है, कहते हैं। आहा..हा..! समा गया है। देखा! यह इतनी आत्मा की पर्याय की ताकत है। ऐसे परमात्मा हैं और ऐसे परमात्मा को वास्तविक आत्मारूप से जो जाने, उसे अन्तर में अनुभव और सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे नहीं। आत्मारूप से; बाह्य की ऋद्धि (नहीं)। समझ में आया? ओहो..हो..! ऐसी शक्ति! जिनकी एक समय की दशा में लोकालोक तो मानो कमल में भ्रमर गया हो। ओहो..हो..! ऐसी जिनकी ज्ञान की दशा, ऐसी अनन्त ज्ञान की दशा का समुद्र ज्ञानगुण है। उस गुण का धारक भगवान आत्मा है। उस आत्मा की ऐसी प्रतीति होने पर, उसे आत्मसन्मुख की दृष्टि होने पर अनुभव और सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

उन नेमिनाथ तीर्थंकर भगवान को मैं सचमुच पूजता हूँ... उन नेमिनाथ तीर्थंकर भगवान को (मैं पूजता हूँ)। ब्रह्मचारी है न? स्वयं ब्रह्मचारी मुनि हैं, इसलिए ब्रह्मचारी

भगवान को याद करके नमन करते हैं। मैं वास्तव में पूजता हूँ – ऐसा कहते हैं। वास्तविक व्यवहार में पूज्यता ऐसी है और निश्चय की पूज्यता आत्मा की ऐसी है, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! आहा..हा..! यह व्यवहार है, परन्तु व्यवहार दिखलाता है उस निश्चय को, ऐसा कहा न? यह व्यवहार दिखलाता है उस निश्चय को, कि जो अखण्ड परिपूर्ण भगवान आत्मा, जिसके ज्ञान के तेज का माप क्या? जिसके अमाप स्वभाव का अन्तर में आश्रय लेकर प्रतीति हो, उस प्रतीति में ऐसे परमात्मा की प्रतीति व्यवहार से आये बिना नहीं रहती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो सब समझ की बात है, भाई! समझ, यह इसकी क्रिया है।

जिससे ऊँची तरंगोंवाले समुद्र को भी... ओहो..हो..! समुद्र की उछालें मारती ऊँची तरंगें हों, उन्हें भी **(दुस्तर संसार को भी) दो भुजाओं से पार कर लूँ।** आहा..हा..! ज्ञान और चारित्र। सम्यग्दर्शन और चारित्र। ज्ञान में समकित आ गया। दो भुजाओं द्वारा संसार का पार हो जाना है। कहो, जेठाभाई! **ऊँची तरंगोंवाले समुद्र...** महा दुस्तर संसार समुद्र ऐसा। भगवान को हमने पहिचाना और उन भगवान की प्रतीति में मेरे स्वरूप की प्रतीति निश्चय से अन्दर आ गयी है, ऐसा कहते हैं। यह व्यवहार तो निश्चय को बतानेवाला है। भेद कथन निश्चय को (बतानेवाला है)। आहा..हा..! जिसे ऐसे परमात्मा की वास्तविक व्यवहार श्रद्धा हो, उसे आत्मा की निश्चय श्रद्धा हो ही। समझ में आया? अखण्ड आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप भगवान की अन्तर में अनुभव में प्रतीति होना, उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन है। आहा..हा..! समझ में आया? भाई को हिन्दी दिया है? हिन्दी है न? हिन्दी आया है न? अच्छा। यहाँ गुजराती चलता है, उसमें हिन्दी है।

देखो! पद्मप्रभमलधारिदेव ९०० वर्ष पहले दिगम्बर मुनि थे। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज तो २००० वर्ष पहले हुए। उनकी टीका करनेवाले भी इतने उछल गये हैं। ओहो..! ऐसे नेमिनाथ भगवान, जिन्हें पूर्ण ज्ञान, उसमें लोकालोक तो मानो अन्दर भँवरा समा गया हो, इतना लगे। ओहो..हो..! कितना विकास बताते हैं! कमल तो बड़ा इतना होता है, उसमें भँवरा तो एक जगह बैठा हो। वैसे भगवान आत्मा, जिसकी वर्तमान अवस्था, ज्ञान की शक्ति का विकास इतना होता है। ऐसी ही शक्ति जीव की होती है। जिसमें लोकालोक तो भ्रमर की तरह होता है। आहा..हा..! ऐसे ज्ञान की, ऐसे ज्ञान की एक

समय की सत्ता का स्वीकार करनेवाला, ऐसी अनन्त पर्याय की सत्ता आत्मा में है, उसका स्वीकार करे, तब इस पर्याय का स्वीकार व्यवहार से किया, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहा..हा..! जिस-तिस भगवान का नाम मानते हैं न? हम परमेश्वर हैं, हम भगवान हैं। बापू! परमेश्वर का पेट बड़ा है। समझ में आया?

मैं तो **दो भुजाओं से पार कर लूँ।** ऐसा कहा, देखो! संसार-समुद्र का थाह ले लेनेवाला हूँ। आहा..हा..! ऐसा कहते हैं। क्यों? ऐसे परमात्मा की ऐसी ज्ञान की एक समय की दशा की मुझे व्यवहार में प्रतीति है, निश्चय में मेरे आत्मा के स्वरूप की मुझे प्रतीति है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....एक समय की पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय है और उसकी प्रतीति-पर की प्रतीति तो व्यवहार है, परन्तु व्यवहार बताता है किसे? निश्चय को। कि ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का पिण्ड भगवान आत्मा, एक गुण ऐसे अनन्त गुण, उनका एकरूप भगवान आत्मा, उसकी अन्दर अनुभव में प्रतीति हो, उसे सच्चा समकित और श्रद्धा कहा जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? ८वीं गाथा।

गाथा-८

तस्स मुहुग्गद-वयणं पुव्वावर-दोस-विरहियं सुद्धं।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था।।८।।

तस्य मुखोद्गत-वचनं पूर्वापर-दोष-विरहितं शुद्धम्।
आगममिति परिकथितं तेन तु कथिता भवन्ति तत्त्वार्थाः।।८।।

परमागमस्वरूपाख्यानमेतत्। तस्य खलु परमेश्वरस्य वदनघनजविनिर्गतचतुरवचनरचना-प्रपञ्चः पूर्वापरदोषविरहितः, तस्य भगवतो रागाभावात् पापसूत्रवद्धिन्सादिपापक्रिया-भावाच्छुद्धः परमागम इति परिकथितः। तेन परमागमामृतेन भव्यैः श्रवणाञ्जलिपुटपेयेन मुक्तिसुन्दरीमुखदर्पणेन सन्सरणवारिनिधिमहावर्तनिमग्नसमस्तभव्यजनतादत्तहस्तावलम्बनेन सहजवैराग्यप्रासादशिखर - शिखामणिना अक्षुण्णमोक्षप्रासादप्रथमसोपानेन स्मरभोगसमुद्भूता-प्रशस्तरागाङ्गारैः पच्यमानसमस्तदीनजनतामहत्क्लेशनिर्नाशनसमर्थसजलजलदेन कथिताः खलु सप्त तत्त्वानि नव पदार्थाश्चेति।

तथा चोक्तं श्रीसमन्तभद्रस्वामिभिः ह्न

(आर्या)

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञान-मागमिनः।।

परमात्म-वाणी शुद्ध पूर्वापर रहित निर्दोष है।
आगम वही, देती वही तत्त्वार्थ का उपदेश है॥८॥

अन्वयार्थ :—[तस्य मुखोद्गतवचनं] उनके मुख से निकली हुई वाणी, जो कि [पूर्वापरदोषविरहितं शुद्धम्] पूर्वापर दोषरहित (आगे -पीछे विरोधरहित) और शुद्ध है, उसे [आगमम् इति परिकथितं] आगम कहा है [तेन तु] और उसे [तत्त्वार्थाः] तत्त्वार्थ [कथिताः भवन्ति] कहते हैं।

टीका :—यह, परमागम के स्वरूप का कथन है।

उन (पूर्वोक्त) परमेश्वर के मुखकमल से निकली हुई चतुर वचनरचना का विस्तार, जोकि 'पूर्वापर दोषरहित' है और उन भगवान को राग का अभाव होने से पापसूत्र की भाँति, हिंसादि पापक्रियाशून्य होने से 'शुद्ध' है — वह परमागम कहा गया है। उस परमागम ने कि जो (परमागम) भव्यों को कर्णरूपी अञ्जलिपुट से पीनेयोग्य अमृत है; जो मुक्तिसुन्दरी के मुख का दर्पण है (अर्थात्, जो परमागम, मुक्ति का स्वरूप दरशाता है), जो संसारसमुद्र के महाभंवर में निमग्न समस्त भव्यजनों को हस्तावलम्बन (हाथ का सहारा) देता है; जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि* है; जो कभी न देखे हुए (अनजाने; अननुभूत; जिस पर स्वयं पहले कभी नहीं गया है, ऐसे) मोक्ष -महल की प्रथम सीढ़ी है और जो कामभोग से उत्पन्न होनेवाले अप्रशस्त रागरूप अंगारों द्वारा सिकते हुए समस्त दीनजनों के महाक्लेश का नाश करने में समर्थ सजल मेघ (पानी से भरा हुआ बादल) है, उसने वास्तव में सात तत्त्व तथा नव पदार्थ कहे हैं।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्री समन्तभद्रस्वामी ने (रत्नकरण्डश्रावकाचार में ४२ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

न्यूनाधिकता बिना, विपर्यय रहित यथार्थ वस्तु का ज्ञान।
निःसन्देह उसे कहते हैं आगमज्ञाता सम्यग्ज्ञान॥

श्लोकार्थ :- जो न्यूनता बिना, अधिकता बिना, विपरीतता बिना, यथातथ वस्तुस्वरूप को निःसन्देहरूप से जानता है, उसे आगमियों[१], ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) कहते हैं।

गाथा-८ पर प्रवचन

ऐसे जो भगवान परमात्मा। ऐसे कौन से ?

तस्स मुहुग्गद-वयणं पुव्वावर-दोस-विरहियं सुद्धं।

---

* शिखामणि=शिखर के ऊपर का रत्न, चूड़ामणि, कलंगी का रत्न।
(परमागम, सहज वैराग्यरूपी महल के शिखामणि समान है क्योंकि परमागम का तात्पर्य, सहज वैराग्य की उत्कृष्टता है।)

१. आगमियों=आगमवन्तों; आगम के ज्ञाताओं।

उनके मुख से निकली हुई वाणी,... आहा..हा..! तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा।

तस्स मुहुग्गद-वयणं पुव्वावर-दोस-विरहियं सुद्धं।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था।।८।।

देखो! तत्त्वार्थ कहो, द्रव्य कहो, सब एकार्थ है यहाँ?

परमात्म-वाणी शुद्ध पूर्वापर रहित निर्दोष है।
आगम वही, देती वही तत्त्वार्थ का उपदेश है॥७॥

अन्वयार्थ :— उनके मुख से निकली हुई वाणी,... ऐसे परमात्मा की जो व्याख्या की, उनके मुख से निकली हुई वाणी, **जो कि पूर्वापर दोषरहित (आगे-पीछे विरोधरहित)...** होती है। अज्ञानी की वाणी में आगे-पीछे विरोध होता है। आहा..हा..! कहो समझ में आया? पहले और बाद में कहीं अन्दर दुमेल नहीं होता। विरोधरहित वीतराग परमात्मा की वाणी को यहाँ आगम कहा जाता है। उस आगम में कहे हुए द्रव्यों अथवा तत्त्वार्थों की श्रद्धा, ऐसा कहते हैं। भगवान ने कहे हुए आगम में तत्त्व। समझ में आया? श्वेताम्बर में वे हैं नहीं। वहाँ तो वीतराग की वाणी ही नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर की परम्परा की वाणी वहाँ है ही नहीं। वे तो नये कल्पित शास्त्र बनाये हैं। समझ में आया? श्वेताम्बर और उसमें से निकले स्थानकवासी, उनमें से निकले तेरापंथी, तीनों कल्पित शास्त्रों में माननेवाले हैं... ऐ... पोपटभाई! उनके पास भगवान की वाणी नहीं है। भारी कठिन काम! वे कहते हैं, इसलिए यह स्थापित किया है। भगवान की वाणी, त्रिलोकनाथ के मुख में से (निकली हुई), पूर्वापर विरोधरहित वाणी को **आगम कहा है...** उसे आगम कहते हैं। विरोधरहित शुद्ध है। पूर्वापर विरोध हो, वह शुद्ध वाणी नहीं हो सकती। समझ में आया? यह तो ऐसी बात है भाई! **उसे तत्त्वार्थ कहते हैं।** उसे वाणी ने जो तत्त्वार्थ कहे। तत्त्वार्थ कहो या द्रव्य कहो, दोनों शब्द यहाँ एक ही है। कोई ऐसा कहते हैं न कि भाई! द्रव्य भी अलग और तत्त्वार्थ अलग। ऐसा नहीं है। यहाँ तो तत्त्वार्थ को द्रव्य कहा है और द्रव्य को तत्त्वार्थ कहा है।

टीका :— यह, परमागम के स्वरूप का कथन है। परम आगम। भगवान के मुख से निकली हुई वाणी का यह कथन है। **(पूर्वोक्त) परमेश्वर के मुखकमल से निकली हुई...** मुख-कमल में से निकली हुई, वह तो लौकिक की अपेक्षा से कथन किया

है। वाणी मुख से निकले न, ऐसा। बाकी तो सम्पूर्ण देह से निकलती है। भगवान को सम्पूर्ण देह से ॐध्वनि आती है। समझ में आया?

परमेश्वर के मुखकमल से निकली हुई चतुर वचनरचना का... कैसी वचनरचना? चतुर वचनरचना। **विस्तार - चतुर वचनरचना का विस्तार, जोकि 'पूर्वापर दोषरहित' है...** पहले कुछ कहा और बाद में कुछ कहा, ऐसा उसमें नहीं होता। **और उन भगवान को राग का अभाव होने से...** परमात्मा वीतरागस्वरूप, पूर्ण सर्वज्ञपरमात्मा होने से राग का उन्हें अभाव है। **पापसूत्र की भाँति, हिंसादि पापक्रियाशून्य होने से...** उसमें पाप से और पुण्य से धर्म होता है, यह बात उसमें नहीं होती। **पापसूत्र की भाँति, हिंसादि पापक्रियाशून्य होने से 'शुद्ध' है...** भगवान की वाणी शुद्ध है। आहा..हा..! वह वाणी परम्परा दिगम्बर में रही है। अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया? वाड़ावालों को भारी कठिन लगे कि हमारा वाड़ा (सम्प्रदाय) खोटा? लाख बार खोटा। खोटा क्या? समझ में आया? वीतराग परमेश्वर की वाणी परम्परा हो तो वह दिगम्बर सन्तों में है, अन्यत्र कहीं नहीं है। मलूपचन्दभाई! समझ में आया या नहीं? ऐई! रायचन्दभाई के। देखो यह ऐसा कहते हैं। सबेरे आया था। रायचन्दभाई का पुत्र आया था। वहाँ भी रखे और यहाँ भी रखे। दूध-दही में रखे। दूध-दही समझे?

यहाँ तो भगवान ऐसा कहते हैं कि परमात्मा के मुख से जो वाणी निकली, वह दिगम्बर सन्तों ने ही रखी है। वह वाणी अन्यत्र नहीं है। श्वेताम्बर में—मूल मन्दिरमार्गी श्वेताम्बर में भी नहीं है। उनमें से निकले हुए स्थानकवासी में भी नहीं है। उनमें से निकले हुए तेरापंथी तुलसी में भी यह वाणी नहीं है। समझ में आया?

'पूर्वापर दोषरहित' है और उन भगवान को राग का अभाव होने से पापसूत्र की भाँति, हिंसादि पापक्रियाशून्य होने से 'शुद्ध' है — वह परमागम कहा गया है। देखो, उसे परमागम कहते हैं। आगे-पीछे एक ओर भगवान को रोग सिद्ध करे; और एक ओर उनको साता की उग्रता सिद्ध करे। एक ओर इन्द्रों में रोग नहीं होता और इन्द्रों के पूज्य गुरु को, तीर्थंकर को रोग हो, तो यह तो पूर्वापर विरुद्ध है। समझ में आया? पण्डितजी! गजब बात भाई!

मुमुक्षु : मनगढ़ंत जोड़ दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना सम्प्रदाय चलाने के लिये जोड़ दिया। सभी शास्त्र कल्पना है। ३२-४५ शास्त्र हैं, वे सब कल्पना के शास्त्र हैं। भगवान की वाणी नहीं और भगवान की परम्परा भी उनमें नहीं। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : उसमें आत्मा की हिंसा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हिंसा है। राग से धर्म मनवाया है, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति से धर्म मनवाया है, केवली का रूप विरुद्ध बताया है, साधु का स्वरूप विरुद्ध बताया है। वस्त्र-पात्र रखे, उसे साधु मनवाते हैं—वह सब तत्त्व से विरुद्ध है। समझ में आया? ऐई... भीखाभाई! ऐसा है। वीतराग की वाणी पूर्वापर विरुद्ध नहीं होती, ऐसा कहते हैं। एक ओर केवली सिद्ध करना और फिर केवली छद्मस्थ का विनय करे, (ऐसा सिद्ध करना), यह पूर्वापर विरोध है, यह परमागम नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परमागम में तो पूर्वापर विरोधरहित हो। वीतराग के मुख से निकला हुआ धोध-प्रवाह चलता हो, गणधरों ने रचा और कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य जंगलवासी दिगम्बर सन्तों ने रचकर वीतराग की वाणी खड़ी रखी है। कहो, कान्तिभाई! गजब भाई!

वह परमागम कहा गया है। देखो! **उस परमागम ने कि जो (परमागम) भव्यों को कर्णरूपी अञ्जलिपुट से पीनेयोग्य अमृत है;...** ऐसी वीतराग की वाणी, वह श्रोताओं को-आत्मार्थियों को सुनने जैसी है, ऐसा कहते हैं। भाई! तुम्हें यह वाणी सुनने जैसी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐई! फूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : यही वाणी सच्ची है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही वाणी सुनने योग्य है। कर्ण अमृत। बाकी सब जहर है, ऐसा कहते हैं। ऐ... पोपटभाई! कठिन बात है, बापू! वाड़ा बाँधकर बैठे... आहा..हा..! परम परमात्मा त्रिलोकनाथ अरिहन्तदेव की वाणी का धोध गणधर से लेकर कुन्दकुन्दाचार्य तक चला आया। कुन्दकुन्दाचार्य ने रचना की। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय,....

मुमुक्षु : अष्टपाहुड़।

पूज्य गुरुदेवश्री : अष्टपाहुड़। ऐसी (रचना), लो! कहो समझ में आया? उस परमागम में (परमागम मन्दिर में) उत्कीर्ण होंगे। आहा..हा..! वजुभाई सब मेहनत तो

करते हैं परन्तु अब बाहर का क्या ? क्या करे ? वजुभाई को इसमें दबाव पड़ गया है। एक और अक्षर का चलता नहीं। चार लाख अक्षर लिखाना। यह और कल कोई लाये थे, वह थोड़ा कुछ ठीक लगता है। यदि समरूप हो जाये तो।

मुमुक्षु : हो जाये तो बहुत-बहुत.... हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल लाये थे मुझे बताने को। पन्द्रह हजार का होगा, परन्तु उसमें कुछ नहीं। उससे यदि सरीखे अक्षर आ जायें...

मुमुक्षु : अपने को डाई बनानी पड़े। अपने अक्षर और अंग्रेजी में इसमें अन्तर होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर होता है। परमागम यह बनता है। मकान-मकान (मन्दिर) यह परमागम, यह वीतराग की वाणी। जो कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने परम्परा से कही है, वह वाणी और उसकी टीका। अमृतचन्द्राचार्य की टीका। पद्मप्रभमलधारिदेव की यह टीका। यह सब टीका वहाँ उत्कीर्ण होनी है। समझ में आया ? वजुभाई है न ! वज्र का लेख जैसा सब वहाँ करेंगे। इनके सिर पर है न, अपन तो सुनते हैं।

मुमुक्षु : मुझे बहुत रुचता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं ऐसा कुछ नहीं। सिर पर इनके है न ? इनके सिर पर यह सब है। दूसरा कौन करता है ?

मुमुक्षु : इतना सोचा नहीं था कुछ.... तो एकदम सरल हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वीतराग की वाणी, परम्परा की, परमेश्वर की। दिगम्बर सन्तों की कही हुई वह तो केवलज्ञानी के टंकोत्कीर्ण शब्द हैं। कहीं एक अक्षर में विरोध नहीं। उस वाणी को वाणी कहने में आता है, बापू ! आहा..हा.. ! जो वाणी श्रोताओं को, देखा !

भव्यों को कर्णरूपी अञ्जलिपुट से पीनेयोग्य अमृत है;... यहाँ तो समुच्चय शब्द है न ? यहाँ भव्य डाला जा सकता है। उसमें भव्य का अर्थ दूसरा है। वहाँ भवि शब्द है। भवि अर्थात् भव को तिरनेवाला। भव को तिरनेवाले जीव, ऐसा।

भव्यों को कर्णरूपी अञ्जलिपुट से पीनेयोग्य अमृत है;... लो, **'भव्यैः**

श्रवणाञ्जलिपुटपेयेन' है न? संस्कृत में **'भव्यैः'** शब्द पड़ा है। **'भव्यैः'** शब्द है। **'भव्यैः'** यह अलग और वह भवि अलग। यह **'भव्यैः'** है। पण्डितजी! संस्कृत टीका में है। **'भव्यैः'** चौथी लाईन। यह भवि वहाँ लिया जाता है। **'भव्यैः'** शब्द है न? **'भव्यैः श्रवणाञ्जलिपुटपेयेन मुक्तिसुन्दरीमुखदर्पणेन'** यहाँ तो अपने भव्यरूपी जीवों को। भव्य जीव यहाँ लेना है, यहाँ यह लेना है। **कर्णरूपी अञ्जलिपुट से...** कर्णरूपी अंजुली। लोग पीते हैं न ऐसे? यह पानी दूसरा ऊपर से डाले, ऊपर से पड़ता हो, ठण्डा, ऐसा... आहा..हा..!

देखो! **भव्यों को कर्णरूपी अञ्जलिपुट से पीनेयोग्य अमृत है;...** ऐसा यहाँ भाई ने लिखा है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में (लिखा है कि) कैसे सूत्र-शास्त्र पढ़ना? सुनने-पढ़ने-लिखने, कहना, लिखाना, यह सब उसमें आ जाता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत शब्द डाले हैं। ऐसे शास्त्र पढ़ना। ऐसे अज्ञानी के कहे हुए शास्त्र, वे नहीं पढ़ना, नहीं सुनना, विचार नहीं करना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है न! लो, यह ही शब्द निकला। किसी समय तो ऐसा आता है, कहाँ होगा? वहाँ सामने आया। कैसे शास्त्र पढ़ने, सुनने योग्य है?

जो आगम मोक्षमार्ग का प्रकाश करे, वही आगम वाँचने-सुनने योग्य है। देखो, है? ऐसे करते हुए यहाँ वाँचना, सुनना, तद्नुसार जोड़ना, सीखना, सिखाना, विचारना, लिखाना आदि कार्य भी उपलक्षण से जान लेना। समझ में आया? वीतराग की वाणी, दिगम्बर सन्तों ने कही हुई, वह वीतराग की वाणी है। बाकी वाणी अन्यत्र है नहीं। समझ में आया? उसे सुनना, उसे पढ़ना इत्यादि आया न?

मुमुक्षु : सुनने का, पढ़ने का विकल्प न उठे तो क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : तब तो अन्दर में स्थिर हो जाये। आनन्द में स्थिर हो जाये। आनन्द के अनुभव में स्थिर हो तो उसे कुछ नहीं है। यह तो जिसे पढ़ना, सुनना है, उसे वह नहीं सुनना, यह सुनना - ऐसा यहाँ कहना है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह .....आनन्द के अनुभव में रह जाये तो हो गया। उसे कुछ अटक नहीं है। यह तो है न? बारह अंग का ज्ञान पढ़ना, यह उसे कुछ अटक नहीं है। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ भान होकर अनुभव में आ गया और वह तो उसमें

निमित्त वाणी वीतराग की ही थी। समझ में आया? यह न हो सके, तब पढ़ना और विचारना हो तो यह पढ़ना और विचारना, ऐसा कहते हैं। पढ़ना, सुनना, जोड़ना, सीखना और सिखाना।

मुमुक्षु : यह विचारना?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह विचारना। देखो! विचारना, लिखाना, यह लिखाना। परमागम, यह लिखाना।

मुमुक्षु : यह उत्कीर्ण कराना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह उत्कीर्ण कराना। यह वजुभाई के लिये बात है। देखो! यह उत्कीर्ण कराना। वे शास्त्र उत्कीर्ण नहीं करना।

मुमुक्षु : उत्कीर्ण कराऊँगा उसमें आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ जाता है न, उसमें क्या। यहाँ है न? पालीताणा, श्वेताम्बर के नीचे परम आगम नीचे उत्कीर्ण हैं। अपने यहाँ दिगम्बर उत्कीर्ण कराये। दोनों सामने यहाँ हैं, चौदह मील दूर।

मुमुक्षु : चौदह मील दूर हो न, गुणस्थान भी चौदह।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखा, इस प्रकार साक्षात् या परम्परा द्वारा एक वीतरागभाव को पोषण करे, ऐसे शास्त्र अभ्यास करनेयोग्य है। मोक्षमार्गप्रकाशक में कितनी बात ली है! ओहो..हो..!

कहते हैं, **भव्यों को कर्णरूपी अञ्जलिपुट से पीनेयोग्य अमृत है;...** खोबा, अपनी गुजराती भाषा है। तुम्हारी हिन्दी में क्या कहते हैं? अंजुलि करके पीना। भगवान की वाणी। **जो मुक्तिसुन्दरी के मुख का दर्पण है...** आहा..हा..! **(अर्थात्, जो परमागम, मुक्ति का स्वरूप दरशाता है),...** देखो! भाषा तो देखो! परमागम वीतरागता की पूर्ण दशा क्या है, उसे बताता है। उसका कारण भी वीतरागता है, वह बतलाता है। समझ में आया? परमागम उसे कहते हैं। कि जो पूर्ण वीतरागता को—पूर्ण सर्वज्ञ पद को बतावे। उसका कारण वीतरागता हो, वह भी बतावे। उसे परमागम कहते हैं। बाकी बीच में विपरीतता डाले कि यह अमुक, यह दया, दान, व्रत, भक्ति से कल्याण होगा, मुक्ति होगी, वे सब वचन वीतरागता के नहीं हैं। वे अज्ञानी के कहे हुए वचन हैं। उनमें भी विवाद उठाते हैं।

उसमें कहा है न? यह कहा है, वह तो निमित्त का कथन है, सुन न! समझ में आया?

मुक्तिसुन्दरी के मुख का दर्पण है... मोक्षरूपी सुन्दरी का मुख ऐसे दिखायी दे, ऐसा परमागम है। आहा..हा..! यह तो पर्याय का सिद्धपना जो है, पर्याय का सिद्धपना प्रगट करने के लिये आगम है और सिद्धपना कैसे प्रगट हो, वह आगम में कहा है। चार गति मिले और यह नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..!

जो मुक्तिसुन्दरी के मुख का दर्पण है, जो संसारसमुद्र के महाभंवर में निमग्न समस्त भव्यजनों को हस्तावलम्बन (हाथ का सहारा) देता है;... निमित्त। आहा..हा..! संसाररूपी चौरासी के समुद्र में, महाभंवर में, महाभंवर, भंवर, भंवर में **निमग्न समस्त भव्यजनों को...** समस्त भव्यजनों को **हस्तावलम्बन (हाथ का सहारा) देता है;...** लो, हस्तावलम्ब कहा है न, निमित्त। ११वीं गाथा में। व्यवहार, वह हस्तावलम्ब। यह निमित्त से कहा है। वापस वहाँ इसका फल संसार कहा है। यहाँ तो निमित्त भी बताना है न? **हस्तावलम्बन (हाथ का सहारा) देता है;...** ओहो..हो..! जिसमें से वीतरागता खड़ी हो और पूर्ण वीतरागता जिसमें मिले, ऐसी वाणी को यहाँ परमागम कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : निमित्त होवे तो ऐसा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो। होवे तो ऐसा ही होता है; दूसरा निमित्त नहीं होता।

जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि है;... आहा..हा..! **शिखामणि=शिखर के ऊपर का रत्न, चूड़ामणि, कलंगी का रत्न। (परमागम, सहज वैराग्यरूपी महल के शिखामणि समान है क्योंकि परमागम का तात्पर्य, सहज वैराग्य की उत्कृष्टता है।)** भाषा देखो! आगम में स्वरूप का अस्तिपना बतलाकर, पर की, सबकी उपेक्षा करावे, उसका नाम सहज वैराग्य का शिखामणि कहा जाता है। निमित्त की, राग की, अल्पज्ञता की सबकी उपेक्षा करके स्वभाव की अपेक्षा करावे, उसे परमागम कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? भाषा कैसी, देखो न!

जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि है;... स्वाभाविक पर से उदास। आहा..हा..! पर से उदास कराकर स्वसन्मुख के अस्तित्व में जोड़ देता है, ऐसी वाणी को यहाँ परमागम कहा जाता है। समझ में आया? **(वैराग्यरूपी महल के शिखामणि**

समान है...) (सहज वैराग्यरूपी महल के शिखामणि समान है...) परमागम है। **(क्योंकि परमागम का तात्पर्य, सहज वैराग्य की उत्कृष्टता है।)** ऐसी नास्ति से बात ली है और अस्ति तो पूर्ण है, परन्तु यहाँ से हटाया है और इसमें जोड़ दिया है। पर से बिल्कुल उपेक्षा करायी है। निमित्त में निमित्त से, राग से और अल्पज्ञता से (उपेक्षा करायी है)। आहा..हा..! समझ में आया?

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि है;... यह **चूड़ामणि, कलगी का रत्न।** कलगी का रत्न। **जो कभी न देखे हुए (अनजाने; अननुभूत; जिस पर स्वयं पहले कभी नहीं गया है, ऐसे) मोक्ष-महल की प्रथम सीढ़ी है...** मोक्ष के महल का, छूटने के महल का... आहा..हा..! कहते हैं, आगम उसे कहते हैं कि जो अन्दर स्वभावसन्मुख में ढालकर पर से विमुख करे, यह उसका पहला सोपान है। समझ में आया? उसमें (श्वेताम्बर में तो) कहे—व्यवहारी, वह समकिती, लो ऐसा कहा। व्यवहार तो राग है। **मोक्ष-महल की प्रथम सीढ़ी है...** आहा..हा..! इस परमागम में यही ध्वनि दी है, ऐसा कहते हैं। स्वभाव-सन्मुख ढालते-झुकाते और पर से उदासीन करके अन्तर में स्थिर होने की बात की है, वह मोक्षमहल की पहली सीढ़ी है। समझ में आया?

और जो कामभोग से उत्पन्न होनेवाले अप्रशस्त रागरूप अंगारों द्वारा सिकते हुए समस्त दीनजनों के महाक्लेश का नाश करने में समर्थ सजल मेघ है,... आहा..हा..! **कामभोग से उत्पन्न होनेवाले अप्रशस्त राग...** मैला राग, अशुभराग, अंगारा, उस अग्नि में सिकता है। आता हे न काम-भोग। **'सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा'** यह सब शैली टीका में ली है। **कामभोग से उत्पन्न होनेवाले अप्रशस्त राग...** बुरा राग, पाप राग से अंगारों द्वारा सिकते हुए। आहा..हा..! शीतलस्वरूप भगवान आत्मा में कामभोग का राग तो अंगारे जैसा सिकता है, कहते हैं। ऐसे **समस्त दीनजनों के...** दीन प्राणी, जिनकी वासना विषय में जाकर सुख मानती है। सुलगते हुए अंगारों से वे सुलग गये हैं। आहा..हा..! भट्टा-भट्टा बड़ा होता है। ऐसे दीनजन, जिन्हें राग में-अप्रशस्त राग में जिन्होंने प्रेम और सुख मनाया है, वे दीन प्राणी हैं। आत्मा में आनन्द है, इसकी उन्हें खबर नहीं है। दीन-भिखारी हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : अप्रशस्त को भट्टी कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : भट्टी है न, भट्टी है न? यह तो यहाँ अप्रशस्त की बात है न, इसलिए। यहाँ तो जो बात चलती है, उसे लेना है न। वास्तव में तो काम अर्थात् पर की ओर की इच्छा और उसका भोगना, यह दोनों कामभोग कहलाते हैं। लो, वास्तव में तो कर्ता और भोक्ता। किसी भी विकल्प का कर्ता और भोक्ता (होना), उसका नाम कामभोग है। चौथी गाथा में यह अर्थ है। समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति ज्ञायकस्वभाव में से निकलकर जिसे राग होता है और उस राग का अनुभव करता है, वह सब कामभोग की वार्ता और कथा है। समझ में आया?

महाक्लेश का नाश करने में... अग्नि का है न? देखो न! **नाश करने में समर्थ सजल मेघ है...** अकेला बादल नहीं। बरसता मेघ है। **सजल मेघ...** कहा न? प्रपात पड़े, ऐसे बादल हैं। आहा..हा..! जब यह बात हो, उसे रूप तो देना ही पड़ता है या नहीं? पानी से भरा बादल है। अज्ञानियों के क्लेश को, महाक्लेश को नाश करने के लिये भगवान की वाणी, दिव्यध्वनि और परमागम सजल मेघ है। जल से भरा हुआ बादल है। अकेला बादल हो और (वर्षा) करे नहीं, वह नहीं। यह तो जल से भरा हुआ बादल बरसे ही। आहा..हा..! देखो न! कैसे टीका की है! उसे मान्य नहीं। (इसे भी कुछ लोग अमान्य कहते हैं)। ऐसे भगवान की वाणी परमागम **उसने वास्तव में सात तत्त्व तथा नव पदार्थ कहे हैं।** देखो, तत्त्वार्थ कहे, ऐसा कहा था न? सात तत्त्व कहो, नौ पदार्थ कहो, द्रव्य कहो, बाद में द्रव्य आयेगा। ९वीं गाथा में छह द्रव्य आयेंगे। '**तच्चत्था इदि भणिदा**' सब पुद्गल काय, धर्म सबको तत्त्वार्थ कहा है। आहा..हा..! ऐसे भगवान के परमागम, उसने सात तत्त्व और नौ पदार्थ कहे हैं।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्री समन्तभद्रस्वामी ने (रत्नकरण्डश्रावकाचार में ४२ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञान-मागमिनः।।

वेदाय, यह शब्द जरा ऐसा किया है। वेद और य के बीच लाईन की है। भिन्न किया है। **जो न्यूनता बिना,...** आगम के ज्ञान में न्यूनता नहीं होती, कम हो, वह आगम ज्ञान नहीं है, आगम नहीं है। **जो न्यूनता बिना, अधिकता बिना,...** अतिरेक नहीं होता। जैसा हो

वैसा भगवान ने कहा हो, उसे आगम कहते हैं। उसका नाम आगम का ज्ञान। अमस्तु नहीं आता अपने दस बोल में? कम माने तो मिथ्यात्व, अधिक माने तो मिथ्यात्व, विपरीत माने तो मिथ्यात्व, कम-ज्यादा और विपरीत मिथ्यात्व आता है न? दस प्रकार के मिथ्यात्व। ऐसे न्यूनता नहीं, जैसा स्वरूप है, उस प्रकार वीतराग वाणी कहती है। उससे अधिकता नहीं, विशेषपना बतावे, वह भी वाणी नहीं।

विपरीतता बिना,... विपरीतता नहीं। **यथातथ वस्तुस्वरूप को निःसन्देहरूप से जानता है,...** जैसा है वैसा **वस्तुस्वरूप को निःसन्देहरूप से जानता है, उसे...** उसे-ऐसा लेना वहाँ। वह निकाल डालना। **आगमियों, ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) कहते हैं।** उसे आगमियों, आगमियों। **उसे आगमियों, ज्ञान कहते हैं।** जिस ज्ञान में हीनता नहीं, अधिकता नहीं, विपरीतता नहीं। वीतराग की वाणी में वह (कम, अधिक या विपरीत) नहीं होता। ऐसा जिसे ज्ञान, उस ज्ञान को आगमियों—शास्त्र के ज्ञाताओं, उसे ज्ञान कहते हैं। दूसरे को ज्ञान नहीं कहते। कहो, समझ में आया? समन्तभद्राचार्य (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) में उन्होंने कहा है कि कम, अधिक और विपरीतरहित जो यथार्थ ज्ञान, उसे आगमियों, ज्ञान कहते हैं। कुछ भी कम-अधिक फेरफार, उसे आगमियों ज्ञान नहीं कहते। यह आगम का ज्ञान बताया, लो। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)